पूर्वोत्तर प्रभा
(सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)
Journal Home Page: **http://supp.cus.ac.in/**

हिंदी संपादन कला

बृजेन्द्र कुमार अग्निहोत्री
सहायक प्रोफेसर, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, पंजाब
ईमेल: bkagnihotri@rediffmail.com

शोध-सारांश: जिस प्रकार मनुष्यों में अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, उसी प्रकार उन भावों और विचारों को सुंदरतम और चमत्कारपूर्ण बनाने की अभिलाषा भी उनमें होती है। यही अभिलाषा साहित्य-कला के मूल में रहती है और इसी की प्रेरणा से स्थूल, नीरस और विशृंखल विचारों को सूक्ष्म, सरल और शृंखलाबद्ध साहित्यिक स्वरूप प्राप्त होता है। संपादन कला की यह आधारभूमि है। संपादन कला के माध्यम से ही समाचार-पत्र या पत्रिका में प्रकाशित होने वाले समाचारों और लेखों को आकार प्रदान किया जाता है। सजाना, संवारना व पठनीय बनाना ही संपादन है। यह एक कला होती है। जो इस कला में पारंगत होते हैं, वे समाज में अपार ख्याति अर्जित करते हैं। अभ्यास द्वारा इस कला में निपुण हुआ जा सकता है। वस्तुतः संपादन- समाचार को छोटा करना, उसकी गलतियाँ छांटकर हटाना, गलत/अशुद्ध शब्द या वाक्य एवं तथ्य सही करना, अनावश्यक शब्द-संकेत हटाना, भाषा को प्रवाही तथा पठनीय बनाना, समाचार के अर्थ को समझ में आने लायक बनाना है। प्रस्तुत शोध लेख में संपादन कला के विविध आयामों का विवेचन किया गया है। जिसके अंतर्गत हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में संपादन कला के संक्षिप्त इतिहास, संपादक के दायित्व और संपादन की प्रक्रिया से परिचित कराया गया है। आशा है कि यह शोध लेख संपादन के क्षेत्र में शोध हेतु शोधार्थियों को प्रेरित करेगा।

सूचक शब्द: संपादन, संपादन-कार्य, संपादन-कला, सारगर्भित, समसामयिक, लोकरुचि, लोक-विश्वास

मूल लेख

संपादन कार्य को निष्पादित करने वाला व्यक्ति 'संपादक' कहलाता है। जो व्यक्ति संपादकीय-कार्य का निर्देशन, नियंत्रण एवं निरीक्षण करता है, उसे संपादक कहते हैं। संपादक ही संपादकीय विभाग का प्रमुख प्रशासनिक तथा विधिक अधिकारी होता है। वह समाचार-पत्र या पत्रिका अथवा संपादित ग्रंथ में प्रकाशित सामग्री के लिए उत्तरदायी होता है। 'प्रेस एंड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट, 1867' के अनुसार- समाचार-पत्र, पत्रिका या संपादित कृति में प्रकाशित होने वाली सामग्री का नियंत्रण संपादक के अधीन होता है। संपादक ही निर्णय करता है कि क्या सामग्री प्रकाशित हो, और कौन सी सामग्री प्रकाशित न हो। इसीलिए इस कानून की धारा-5 के अंतर्गत समाचार-पत्र या पत्रिका की प्रत्येक प्रति पर संपादक का नाम प्रकाशित अनिवार्य किया गया है। समाचार-पत्र के प्रकाशन हेतु जो घोषणा-पत्र दाखिल किया जाता है, उसमें भी समाचार-पत्र या पत्रिका के संपादक का नाम दर्शाया जाना विधिक आवश्यकता मानी गयी है। इस शोध-पत्र

में संपादक द्वारा अपनाई जाने संपादन-रीति को अतीत एवं वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध पत्र में संपादन-कला के मानवीय और तकनीकी पक्षों पर भी विस्तृत चर्चा की गई है।

जिस प्रकार मनुष्यों में अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने की स्वाभाविक इच्छा होती है, उसी प्रकार उन भावों और विचारों को सुंदरतम शृंखलाबद्ध और चमत्कारपूर्ण बनाने की अभिलाषा भी उनमें होती है। यही अभिलाषा साहित्य-कला के मूल में रहती है और इसी की प्रेरणा से स्थूल, नीरस और विशृंखल विचारों को सूक्ष्म, सरल और शृंखलाबद्ध साहित्यिक स्वरूप प्राप्त होता है। संपादन कला की यह आधारभूमि है। संपादन कला के माध्यम से ही समाचार-पत्र या पत्रिका में प्रकाशित होने वाले समाचारों और लेखों को आकार प्रदान किया जाता है। सजाना, संवारना व पठनीय बनाना ही संपादन है। यह एक कला होती है, जो इस कला में पारंगत होते हैं, वे समाज में अपार ख्याति अर्जित करते हैं। अभ्यास द्वारा इस कला में निपुण हुआ जा सकता है।

संपादन

संपादन का अभिप्राय समाचार को छोटा करना, उसकी गलतियाँ छांटकर हटाना, गलत/अशुद्ध शब्द या वाक्य एवं तथ्य सही करना, अनावश्यक शब्द-संकेत हटाना, भाषा को प्रवाही तथा पठनीय बनाना, समाचार के अर्थ को समझ में आने लायक बनाना है। कमल दीक्षित के अनुसार- "संपादन सरलतम तथा साथ ही कठिनतर कार्य है। सरल ऐसा है कि उसे कोई नौसिखिया मात्र एकाध बार देखकर कर सकता है। कठिन ऐसा कि सही संपादन सीखने में वर्षों लग जाएं। यह यंत्रवत भी है और मौलिक रचना प्रक्रिया की सम्भावना से भरा भी है। यह कौशल है, कला है पर साथ-साथ एक नयी रचना का सृजन भी है।" (जोशी, 2003, पृ. 22) शाब्दिक अर्थ के विवेचनानुसार बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश में- "'संपादन' का शाब्दिक अर्थ काम पूरा करना और ठीक तरह से करना अथवा पुस्तक या सामयिक पत्र आदि का क्रम, पाठ आदि ठीक करके उसे प्रकाशित करवाना होता है।" (वर्मा, 2012, पृ. 224) 'अहा जिंदगी' के संपादक आलोक श्रीवास्तव 'संपादन' शब्द को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं- "अक्सर हम संपादन का अर्थ समाचारों के संपादन से लेते हैं। पर संपादन अपने संपूर्ण अर्थों में पत्रकारिता के उस काम का सम्मिलित नाम है, जिसकी लंबी प्रक्रिया के बाद कोई समाचार, लेख फीचर, साक्षात्कार आदि प्रकाशन और प्रसारण की स्थिति में पहुँचते हैं।" (श्रीवास्तव, 2015, संपादकीय)

संपादन कला का इतिहास

हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकरिता को संस्कारित करने वालों में भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम अग्रणी है। हिंदी गद्य के तो वे जनक ही माने जाते हैं। अपनी विलक्षण संपादन-कला द्वारा हिंदी के बोलियों में बंटे स्वरूप को एक राष्ट्रभाषा में गढ़ने की ठोस नींव भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ही रखी और आज भी वही हिंदी-लेखन का आधार है। भारतेंदु के अतिरिक्त जिनकी संपादन-कला ने साहित्य व समाज में अपनी पहचान स्थापित की, उनमें से कुछ की संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

हिंदी का पहला समाचार-पत्र 'उदंत मार्तण्ड' युगलकिशोर शुक्ल के संपादन में 30 मई, 1826 ई. को कोलकाता से प्रारंभ हुआ। अपेक्षित सहयोग के न मिलने के कारण एक वर्ष सात माह के उपरांत बंद हो गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र (कविवचन सुधा- वाराणसी), सदानंद मिश्र (सार सुधानिधि- कोलकाता), लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक(केसरी - पुणे), प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण - कानपुर), राधाचरण गोस्वामी (भारतेंदु -

वाराणसी), बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (आनंद कादंबिनी - मिर्जापुर) इत्यादि ने अपनी उत्कृष्ट संपादन-कला के बल पर स्वयं को स्थापित किया।

प्रतापगढ़ के ताल्लुकेदार राजा रामपाल सिंह ने लंदन से त्रैमासिक 'हिन्दोस्थान' का प्रकाशन सन् 1883 ई. में आरंभ किया। जुलाई, 1885 ई. तक यह पत्रिका लंदन से प्रकाशित हुई, फिर कालाकांकर (प्रतापगढ़) स्थानांतरित हुई। नवंबर, 1885 ई. में 'हिन्दोस्थान' दैनिक-पत्र हो गया, जो विशुद्ध हिंदी में निकलने वाला पहला दैनिक समाचार-पत्र था। इस पत्र का उल्लेख यहाँ इसलिए आवश्यक है, क्योंकि शायद हिंदी पत्रकारिता में पहली बार किसी संपादक ने अपनी शर्तों के आधार पर संपादन करना स्वीकार किया था। सन् 1886 ई. से 'हिन्दोस्थान' का संपादन पं. मदनमोहन मालवीय ने अपनी दो शर्तों के साथ स्वीकार किया-

1. राजा साहब उन्हें कभी नशे की हालत में नहीं बुलायेंगे,
2. संपादन में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। (जोशी, 2010 , पृ. 30)

'हिन्दोस्थान' के संपादन में पं. प्रतापनारायण मिश्र, बाबू शशिभूषण और बाबू बालमुकुंद गुप्त जैसे विद्वान साहित्यकार पं. मदनमोहन मालवीय जी के सहयोगी थे।

"हिंदी भाषा के उन्नयन और प्रतिष्ठा तथा हिंदी साहित्य की समृद्धि का उद्देश्य लेकर नागरी प्रचारणी सभा ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन सन् 1886 ई. में आरम्भ किया। अपनी सारगर्भित संपादन-कला का परिचय इस पत्रिका के माध्यम से बाबू श्यामसुंदर दास, पं. सुधाकर द्विवेदी, किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू राधाकृष्ण दास, रामचंद्र वर्मा, वेणीप्रसाद और चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने दिया।" (सिंह, 2013, पृ. 59)

हिंदी साहित्य में संपादन-कला को लेकर 'सरस्वती' पत्रिका सर्वाधिक चर्चित रही है। 'सरस्वती' पत्रिका ने हिंदी भाषा और साहित्य को संस्कारित करने के साथ साहित्यकारों और पत्रकारों की पीढ़ियां भी तैयार की हैं। जनवरी, 1900 ई. में सरस्वती का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ, इसमें संपादक के स्थान पर संपादक-मंडल था, जिसमें बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू जगन्नाथदास और किशोरीलाल गोस्वामी थे। सन 1901 ई. में बाबू श्यामसुंदर दास संपादक बने और सन 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। वस्तुतः यहीं से हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता, हिंदी भाषा के नव-संस्कार और संपादन-कला की उत्कृष्टता का युग आरंभ होता है। 'सरस्वती पत्रिका के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की संपादन-कला की महत्ता अग्रलिखित टिप्पणी से समझी जा सकती है- "ऐसा लगता है जैसे आदि से अंत तक उसे एक ही व्यक्ति लिखता है।" (श्रीधर, 2000, पृ. 425)

आचार्य द्विवेदी की संपादन-कला की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन यह मानी जाती है कि उसने हिंदी-लेखन की वर्तनी को शुद्ध किया और हिंदी भाषा को व्याकरण-सम्मत बनाया। हिंदी को मानक स्वरूप देने में 'सरस्वती' पत्रिका ने आचार्य द्विवेदी के अट्ठारह वर्षों के संपादन-काल में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संपादक निरंकुशता और स्वच्छंदता से कोसों दूर रहने वाला एवं सामाजिक भावना के प्रति उत्तरदायित्व की प्रतिभूति माना जाता है। इसलिए उनकी संपादन-कला का मूल ध्येय जनहित ही रहता है। स्वतंत्र बुद्धि के आग्रह से रूढ़ियों से मुक्त होकर सम्पादन-कला को सार्थकता प्रदान की जा सकती है। ऐसी संपादन-कला को अपनाने वाला संपादक मानव-समाज की नैतिक चेतना को सदैव प्रेरणा देता है।

प्रारंभिक समय में पत्रकरिता व्यवसाय नहीं, मिशन थी। नुकसान के बावजूद उस समय हिंदी पत्रिकाओं का प्रकाशन होता था। उस युग के जितने भी संपादक थे, सभी संपादन-कला की प्रतिस्पर्द्धा अपने-अपने पत्र/पत्रिकाओं के माध्यम से करते थे। साहित्य और राष्ट्रीयता ही उनके उद्देश्य थे। उस समय के संपादकों में खुलकर अपनी बात कहने का सहस और निर्भीक क्षमता दिखाई देती है। वे अपनी योग्यता को विनम्रतापूर्वक प्रकट कर रहे थे। जहाँ-जहाँ कमी होती थी, सच्चाई से उसे स्वीकार कर लिया जाता था। उनकी संपादन-कला का महत्त्व जन-मान्य था। इसीलिए सन् 1930 ई. तक माधुरी, सुधा, विशाल भारत, मतवाला, सरस्वती, गंगा, कर्मयोगी, प्रभा, मर्यादा सहित दर्जनों हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं में स्वतंत्र-चेता संपादकों की नीति चलती थी। संपादन-कला में उस समय प्रेमचंद एक अप्रतिम नाम था। प्रेमचंद के संपादन-कार्यों से केवल हिंदी साहित्य की सरल धारा ही समृद्ध नहीं हुई, अपितु वर्तमान और भविष्य के नैतिक जीवन को भी सफल स्वरूप प्राप्त हुआ। प्रेमचंद ने अन्य संपादकों की तरह कुर्सी पर बैठकर 'सैद्धांतिक संपादन-कला' का नारा नहीं लगाया। वह साहित्य के साथ समस्त सामाजिक कलाओं के मर्मज्ञ शिल्पी और स्वतंत्र व्यक्तित्व के उत्कृष्ट साहित्य सेवी थे। उन्होंने अपरिष्कृत या अविदित सामग्री को 'हंस' पत्रिका में कभी प्रकाशित नहीं किया। महात्मा गांधी ('नवजीवन'- अहमदाबाद और 'यंग इंडिया' - मुंबई) ने अपनी संपादन-कला के माध्यम से जन-सामान्य का ध्यान अन्याय की ओर आकर्षित कर सत्याग्रह के पक्ष में वातावरण तैयार किया। इसी तरह अपने विचारों की अभिव्यक्ति शांतिनारायण भटनागर ('स्वराज' - इलाहाबाद) और गणेशशंकर विद्यार्थी ('प्रताप'- कानपुर) ने की, तथा सम्पादन-कला को यथार्थ जन-जीवन से जोड़ने का प्रयास किया। 05 सितंबर, 1920 ई. को वाराणसी से ज्ञानमंडल प्रकाशन द्वारा हिंदी दैनिक 'आज' का प्रकाशन आरंभ हुआ। श्रीप्रकाश के संपादन में निकलने वाले 'आज' की संपादन-कला के मूल में स्वराज्य-प्राप्ति की चिंता और जनता को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करने की भावना दिखाई पड़ती है। 'आज' ही नहीं, पहले प्रकाशित होने वाले अधिकांश पत्रों की संपादन-कला भाषा व जनता के हितार्थ ही दिखाई पड़ती है। धीरे-धीरे व्यावसायिकता के दानव ने संपादन-कला को अपने अधिकार में कर लिया, और विद्वान संपादकों की संपादन-कला का उपयोग उद्योगपति अर्थार्जन के लिए करने लगे। इसके बावजूद शायद ही कोई संपादक ऐसा मिले जो अपनी संपादन-कला को पूर्व-संपादकों से कमतर समझने का साहस दिखाए। ऐसे संपादकों को गालिब ही जवाब दे सकते हैं- 'रेख्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।" (ज़ाफरी, 1958, पृ. 88)

संपादन कला का वर्तमान

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते संपादन-कला इतने सोपान तय कर चुकी है कि अब पीछे मुड़कर देखना एक अद्भुत इतिहास की ओर देखना है। पहले मेन डेस्क का नजारा कुछ ऐसा होता था- केंद्र में मुख्य उपसंपादक तथा उसके संपादक। उपसंपादक कागज पर लिखी या टेलीप्रिंट से आई खबरों को संपादित करते दिखाई देते थे। कागज पर संपादन का नमूना स्पष्ट देखा जा सकता था। उपसंपादक द्वारा संपादित समाचार को मुख्य उपसंपादक जब संशोधन योग्य समझता तो उसी कागज पर अपनी कलम चला देता। ऐसे में संपादित प्रति देखने लायक हो जाती। प्रायः ऐसा होता कि उपसंपादक द्वारा दिया गया शीर्षक पसंद न आने पर मुख्य उपसंपादक उसे नए कागज पर फिर से लिखता। ऐसे में बेकार हो गये कागजों का ढेर लगता चला जाता। टेलीप्रिंटर से आई अनुप्रयोगी सामग्री भी इस ढेर को बढ़ाती। धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन होना आरंभ हुआ। कंप्यूटर के आगमन ने इस परिदृश्य को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया। अब न कागज है, न कलम,

न वह भागमभाग और न ही वह शोर-शराबा। कंप्यूटर के आ जाने से समाचार-पत्रों के कार्यालयों से शोर गायब हो गया है। अब समाचार-डेस्क की शक्ल कुछ इस तरह बनती है- 'मुख्य उपसंपादक की आँखें अपने सहयोगियों की हरकतों पर रहने के स्थान पर कंप्यूटर की स्क्रीन पर लगी रहती हैं। उसे स्क्रीन पर ही अपने सहयोगियों का कार्य दिखाई देता है। वह जब भी चाहे, उन्हें अपना निर्देश कंप्यूटर के माध्यम से कंप्यूटर में ही संप्रेषित कर सकता है।

संपादक

संपादन कार्य को निष्पादित करने वाला व्यक्ति 'संपादक' कहलाता है। जो व्यक्ति संपादकीय-कार्य का निर्देशन, नियंत्रण एवं निरीक्षण करता है, उसे संपादक कहते हैं। संपादक ही संपादकीय विभाग का प्रमुख प्रशासनिक तथा विधिक अधिकारी होता है। वह समाचार-पत्र या पत्रिका अथवा संपादित ग्रंथ में प्रकाशित सामग्री के लिए उत्तरदायी होता है। 'प्रेस एंड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट, 1867' के अनुसार- समाचार पत्र, पत्रिका या संपादित कृति में प्रकाशित होने वाली सामग्री का नियंत्रण संपादक के अधीन होता है। संपादक ही निर्णय करता है कि क्या सामग्री प्रकाशित हो, और कौन सी सामग्री प्रकाशित न हो। इसीलिए इस कानून की धारा-5 (प) के अंतर्गत समाचार-पत्र या पत्रिका की प्रत्येक प्रति पर संपादक का नाम प्रकाशित अनिवार्य किया गया है। समाचार-पत्र के प्रकाशन हेतु जो घोषणा-पत्र दाखिल किया जाता है, उसमें भी समाचार-पत्र या पत्रिका के संपादक का नाम दर्शाया जाना विधिक आवश्यकता मानी गयी है।" (www.rni.nic.in)

संपादन-कार्य

प्रत्येक युवा पत्रकार अपने मन में यथासंभव शीघ्रता से संपादक बनने का स्वप्न संजोये रहता है। संपादन के कार्य की अनेक सीढ़ियां होती हैं। संपादन की पहली सीढ़ी में पहुँचने पर उसके द्वारा उसके पूर्व किये जा रहे कार्य से गुणात्मक रूप से भिन्न कार्य करना पड़ता है। एक संवाददाता अपने आस-पास की घटनाओं में से समाचार लायक घटनाओं को चुनकर पाठक की रुचि के योग्य बनाकर समाचार का स्वरूप प्रदान करता है। विशिष्ट घटना पर केंद्रित करने की प्रतिभा इसका महत्त्वपूर्ण तत्व है। संपादन के लिए इससे पृथक दृष्टि और कौशल की आवश्यकता होती है। उसमें समग्रता से देखने की प्रतिभा के साथ समग्र को एक ढांचे (पैटर्न) में रखने और ढांचे में न आ सकने वाले समाचारों को अलग कर सकने के लिए आवश्यक दृष्टि और कौशल काम आते हैं। राजस्थान में पत्रकरिता के पर्याय कर्पूरचंद कुलिश ('राजस्थान पत्रिका' के स्वामी/प्रकाशक) के अनुसार- "टीम को साथ में लेकर चलने का कौशल, पाठक के मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि संपादक में होनी चाहिए।" (महाजन, 1993, पृ. 47)

समग्रता के साथ देखने के लिए जिस मनोवृत्ति की आवश्यकता समाचार या लेख में काट-छांट के लिए जिस निर्दय हृदय की आवश्यकता होती है वे किसी सीमा तक विरोधाभासी हैं। इसके बावजूद इन दोनों के संयोग से ही अच्छा संपादन संभव है। देश में बड़ी संख्या में समाचार-पत्र व पत्रिकाएं हैं। इनमें बहुत से व्यक्ति संपादक बनते, चले गएय पर कुछ ही हैं जो पाठकों के हृदय और मानस पर अभी भी चमक रहे हैं। क्यों ऐसा होता है कि कुछ व्यक्ति भीड़ से अलग दिखाई देने लगते हैं? क्या इसके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है या इसका कोई विशेष नियम अथवा तरीका है? सभी व्यक्ति कार्य करते हैं, परंतु क्यों कुछ व्यक्तियों का कार्य ही अधिक पसंद किया जाने लगता है? क्यों कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के लिए उदाहरण बन जाता है? यहाँ हमें यह याद रखना है कि लोग केवल उन्हें याद रखते हैं, जिन्होंने अपने

कार्य में उत्कृष्ट प्रदर्शन के साथ अनोखे ढंग से सफलता अर्जित की होती है। उदाहरण के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे विद्वानों का नाम लिया जा सकता है।

प्रत्येक संपादक को लगता है कि वह विलक्षण है, अलग है, अद्भुत है, परंतु प्रश्न यह है कि उसके बारे में औरों की भी यही राय है या नहीं! संपादकों की भीड़ से अलग दिखते संपादक में नेतृत्व की कितनी क्षमता है, यह उसका प्राथमिक मापदंड है- "नेतृत्व-क्षमता में दक्षता ही किसी को संपादकों की भीड़ में से अलग स्टार या सुपरस्टार संपादक बनाती है। उसके साथी उसे संपादक की कुर्सी पर बैठा होने के भाग्य के कारण इज्जत देते हैं या उसके गुणों से प्रभावित होकर जी-जान लगाकर काम करते हैं।" (भारतीय, 2005, पृ. 42)

पत्रकारिता के कार्य से संबद्ध रहते हुए अधिकांश संपादक संपादन करते समय अग्रलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखते हैं-

i. छह ककारों (क्या, कब, कहाँ, कौन, क्यों, कैसे) की उपस्थिति को ध्यान में रखना। यदि समाचार में कोई ककार नहीं है तो उसकी पूर्ति करना।

ii. भाषा की स्पष्टता तथा अर्थवत्ता की ओर ध्यान देना, जिससे कथन का आशय स्पष्ट हो सके।

iii. अनावश्यक शब्द, वाक्य तथा तथ्यों को हटाना।

iv. एकाधिक बार लिखे गए शब्दों और वाक्यों को हटाना।

v. समाचार के कथ्य का पाठक की रुचि से मेल देखना।

vi. समाचार का अच्छा सा अर्थ-झलकता, बोलता हुआ शीर्षक देना।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त प्रकाशन में विधि-अवरोध न आए, मानहानि व न्यायालय की अवमानना न हो, वर्ग-द्वेष, देश-द्रोह इत्यादि कानूनों का उल्लंघन न हो आदि का भी ध्यान रखना पड़ता है।

संपादन करते समय संपादक कुछ संपादन-संकेतों का प्रयोग करते हैं, उनमें से प्रमुख संकेत उल्लिखित है-

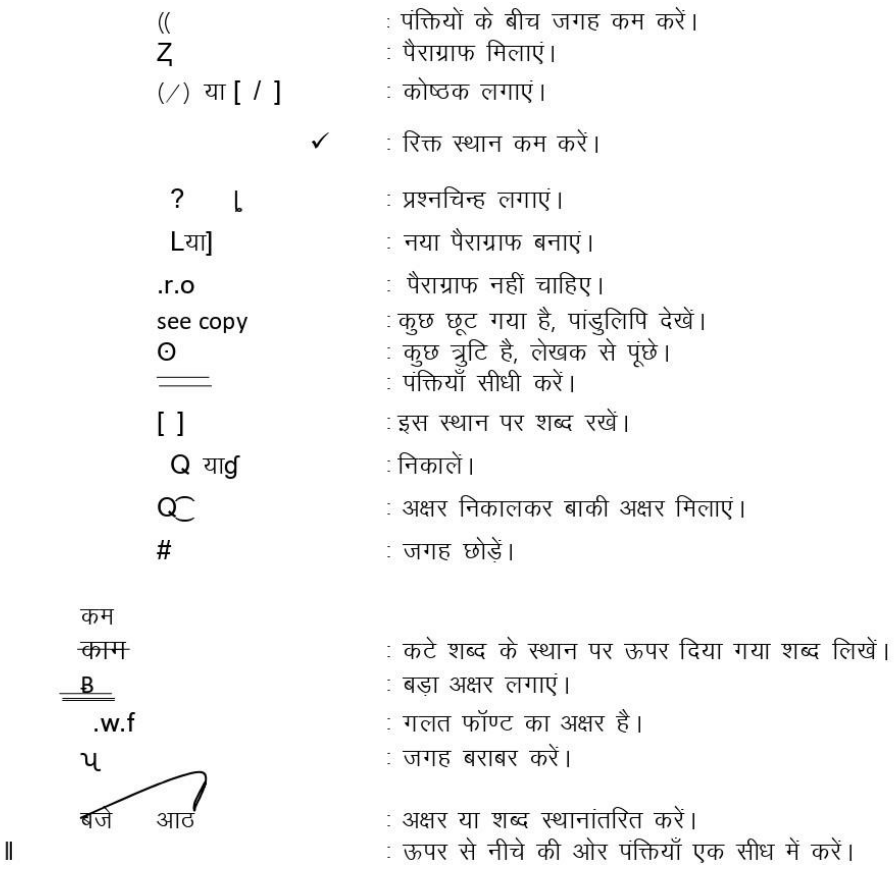

छायाचित्र: संपादन संकेत

इस तरह हम देखते हैं कि संपादन-कला का मानवीय पक्ष व्यावसायिकता के प्रभाव में कमतर हो गया और तकनीकी पक्ष कंप्यूटर-इंटरनेट के कारण अधिक सुदृढ़ हो गया। भाषा की शुद्धता के स्थान पर सर्व-ग्राह्यता की बात कही जाने लगी है। समसामयिक लोकरुचि और लोक-विश्वासों के स्थान पर अर्थार्जन को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है, जिसके प्रभाव में किसी संपादक से संतुलित दृष्टिकोण की अपेक्षा व्यर्थ ही है। अगर कोई संपादक 'वास्तविक संपादक-कला' के मूल्यों को अपनी संपादन-कला में प्रयोग करने का प्रयत्न करता है तो उसकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाना भी आज के समय में संभव नहीं दिखता।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

जोशी, रामशरण. (सं.) (2003). *समाचार संपादन.* दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

वर्मा, आचार्य रामचंद्र .(सं.). (2012). *बृहत् प्रामाणिक हिंदी कोश.इलाहाबाद:* लोकभारती प्रकाशन.

श्रीवास्तव, आलोक, (सं.), *अहा जिन्दगी,* अप्रैल-2015 अंक, संपादकीय

जोशी, सुशीला.(2010).*हिंदी पत्रकारिता: विकास एवं विविध आयाम.*वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

सिंह, धीरेन्द्रनाथ .(सं.). (2013).*हिंदी पत्रकारिता: भारतेंदु पूर्व से छायावादोत्तर काल तक.* वाराणसी:

विश्वविद्यालय प्रकाशन.

श्रीधर, विजयदत्त. (सं.) .(2000). *भारतीय पत्रकारिता कोश*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

जाफरी, अली सरदार .(सं.).(1958).*दीवाने गालिब*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

www.rni.nic.in

महाजन, उषा, (सं).(1993). *समय के साक्षी*. नई दिल्ली: किताबघर.

भारतीय, संतोष .(सं.). (2005). *पत्रकारिता- नए दौर : नए प्रतिमान*. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.